International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 5; May 2017; Page No. 398-400

राष्ट्रीय राजनीति पर क्षेत्रीय दलों का प्रभाव

महेन्द्र कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

लोकतन्त्र के पहियो के रूप में राजनीतिक दल अपरिहार्य है। राजनीतिक दल बहुत बड़ी सीमा तक हमारे जीवन के महत्वपूर्ण अंग बन चुके है। राजनीतिक शब्द का उच्चारण करते समय उसमें राजनीतिक दलों की ध्वनि झंकृत होती है। लोकतन्त्र चाहे उसका कोई भी स्वरूप क्यों न हो, राजनीतिक दलों की अनुपस्थिति में अकल्पनीय है, इसी लिये उन्हे लोकतन्त्र का प्राण कहा गया है। यदि राजनीतिक दलों को शासन का चतुर्थ अंग कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। आज की प्रतिनिधि मूलक सरकार का सार यही है कि सरकार और संसद दोनो पर दल का प्रतिबंध रहता है।

विधानमण्डल और न्यायपालिका, सरकार और संसद केवल संवैधानिक आवरण है। यथार्थ शक्ति का उपोग राजनीतिक दल ही करते है। भारत में राजनैतिक प्रक्रिया वास्वत में उस समय आरम्भ हुई जब 1885 में कांग्रेस की स्थापना की गयी थी, उसके पष्चात् 1907 में मुस्लिम लीग की स्थापना की गयी और तत्पश्चात् स्वराज पार्टी, भारतीय कम्यूनस्टि पार्टी, तथा हिन्दू महासभा का राष्ट्रीय स्तर पर और अकाली दल यूनियनिस्ट पार्टी (जम्मू–कमीर में) का क्षेत्रीय स्तर पर गठन किया गया। भारत जैसे देश में अत्याधिक भिन्नता है, राजनीतिक–धारा प्रवाह अनिश्चित है, परम्परागत जाति राजनीति से लोकतान्त्रिक जन राजनीति में परिवर्तन हो रहा है। परम्परागत समूह क्षेत्रीय पहचान व अपने व्यक्तित्व की मॉग कर रहे है परिणामस्वरूप क्षेत्रवाद की विचारधारा से प्रभावित होकर क्षेत्रीय दलों का प्रादुर्भाव हुआ है। सन् 1947 से 1979 की मध्यावधि में सिवाय 1977–1979 के काल को छोड़कर कांग्रेस दल का ही केन्द्र में शासन बना रहा, परन्तु कई राज्यों में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों द्वारा इसे चुनौती दी गयी। उदाहरणतया आन्ध्र प्रदेश में तेलगू देशम् द्वारा, तमिलनाडु में डी0 एम0 के तथा अन्ना डी0 एम0 के0 द्वारा, पंजाब तथा पेप्सू में अकाली दल द्वारा इत्यादि क्षेत्रीय राजनीतिक दलों द्वारा एक बार या एक बार से अधिक राज्यों की विधानसभाओं के चुनावों में पराजित किया गया, सिक्किम में अब भी सिक्किम परिशद की सरकार है। इसके इतिरिक्त कम्युनिस्ट मार्कसिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी असम गण परिशद इत्यादि जैसे कुछ राजनीतिक दल ऐसे है जिनका आधार भी कुछ क्षेत्रो तक ही सीमित है। विवरणों को देखने पर यह स्पस्ट हो जाता है कि जहां एक ओर इन क्षेत्रीय राजनीतिक दलों द्वारा कांग्रेस पार्टी को प्रभावकारी चुनौती दी गयी वही दूसरी तरफ राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय जनता पार्टी, बहुजन समाजवादी पार्टी व साम्यवादी दलों को छोड़कर राष्ट्रीय पर पहचान बनाने के मामले में अन्य क्षेत्रीय दलों को अभी लम्बी दूरी तय करना है यद्यपि कि कांग्रेस पाटी का जनाधार जैसे–जैसे कमजोर हो रहा है क्षेत्रीय एवं राज्य स्तरीय दलों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है।

जहां तक क्षेत्रीय दलों के उभार व प्रभाव की बात है इनके बारे में प्रायः हमारा नजरिया नकारात्मक ही रहा है और हम आसानी से कह देते है कि राज्यस्तरीय दल या क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय अखण्डता के विरूद्ध है, क्षेत्रीय दलों से राष्ट्रीय एकता कमजोर होती है और केन्द्र–राज्य तनाव की स्थिति उत्पन्न होती हैं यदि हम ऐसा स्वीकार करते है तो यह क्षेत्रीय दलों के उभार के सकारात्मक दृष्टिकोण की अवहेलना करते होते है। भारतीय संघ में क्षेत्रीय दलों की महत्वपूर्ण भूमिका है और उनकी सकारात्मक भूमिका की तर्कसंगत व्याख्या की जानी चाहिये। यह धारणा गलत साबित हुई है कि क्षेत्रीय दलों के सत्ता में आने से राष्ट्रीय अखण्डता भंग हुई है यदि ऐसा होता तो तथाकथित राष्ट्रीय दल कांग्रेस, डी0 एम0 के0, अकाली दल, नेशनल कांफ्रेन्स, झारखण्ड मुक्ति मोर्चा जैसे क्षेत्रीय दलों से समय–समय पर गठबंधन न करती है। गठबंधन राजनीति पर क्षेत्रवाद एवं क्षेत्रीय दलों के प्रभाव को सकारात्मक व नकारात्मक दोनो दृष्टिकाणो से देखा जा सकता है इनके उभार से गठबंधन राजनीति पर पड़ रहे प्रभाव को निम्न रूपों में देखा जा सकता है भारतीय संविधान के संघात्मक प्रावधानों के क्रियान्वयन का सफल परीक्षण हुआ – क्षेत्रीय दलो के प्रदुर्भाव के कारण ही भारतीय संविधान में उल्लिखित संघात्मक प्रावधानो को सही मायनों मे परीक्षण हो सका भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में स्थापित एक दलीय सरकार को एकाधिकारवादी प्रभुसत्ता की राजनीति पर लगाम लगाकर इसने एक रचनात्मक भूमिका अदा की। भारत के अलग–अलग क्षेत्रों की पहचान तथा उनके अधिकारों की आवाज बुलन्द करके राज्यो की संविधान प्रदत्त स्वायत्तता एवं स्वतन्त्रता की रक्षा की जा सकी। क्षेत्रीय दलो के उभार ने अनेक राज्यों में प्रतियोगी दल प्रणाली या द्विदलीय व्यवस्था की स्थापना करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया जिससे संसदीय व्यवस्था के संचालन मे आसानी हुई। क्षेत्रीय दलो के उद्भव के परिणामस्वरूप जो बात सबसे महत्वपूर्ण रही वह यह कि इन दावो ने क्षेत्र विशेष के लिये अधिकतम आर्थिक सुविधाओं की मॉग करके व्याप्त क्षेत्रीय, प्रादेशिक विशमता को दूर करके भारत के समुचित सर्वागीण विकास को गति प्रदान की। अनेक ऐसी योजनाओं और कार्यक्रमो का क्रियान्वयन सम्भव हो सका जो शायद क्षेत्रीय दलों के दबाव के बिना क्रियान्वयन नही हो पाते। क्षेत्रीय नेतृत्व ने सत्ता में रहकर अपने दावों को उचित साबित करने के लिये अपने राज्यों के विकास के लिये विशेष प्रयत्न किये फलस्वरूप राज्यों के विकास से सारे देश को ही लाभ पहुॅचा।

राजनीतिक संस्कृति का विकास

यह बात बिल्कुल स्पस्ट है कि जब तक जनता सक्रिय रूप से राजनीति में भाग नही लेती तब तक किसी प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था को बहुत अधिक समय तक जीवित नही रखा जा सकता। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की इस देश को सबसे बड़ी देन यह कि उन्होने अशिक्षित जनता में राजनैतिक जागरूकता की भावना को प्रज्ज्वलित किया, परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि उनकी मृत्यु के पश्चात् और बहुत ही लम्बे समय तक एक ही राजनीतिक दल का शासन में बने रहने के कारण लोगों में राजनीति के प्रति उदासीनता की भावना घर कर गयी और फलस्वरूप उनकी राजनीतिक प्रक्रिया में दिलचस्पी कम हो गयीं इस प्रवृत्ति का दुष्परिणाम यह निकला कि

केन्द्र तथा राज्यों मे सत्ता का दुरूपयोग आरम्भ हो गया। भारतीय जनमानस में राजनीति के प्रति दिलचस्पी पुनः तब शुरू हुई जब डी0 एम0 के0 जैसी क्षेत्रीय दलों की उत्पत्ति हुई, ये क्षेत्रीय दल ऐसे राजनीतिक मुद्दों को उठाया जिनका सीधा प्रभाव जनता के जीवन पर पड़ता था और जिनके प्रति उनका सीधा भावनात्मक सम्बन्ध था। राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, सामाजिक न्याय, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद समता व भाईचारा इत्यादि ऐसे विषय है जिनसे साधारण जन–मानस का सीधे लगाव नही है, यह बात विशेषकर उन वर्गो पर लागू होती है जो आर्थिक रूप से कमजोर पिछड़े हुये एवं शोषित व दलित है और इस देश में ऐसे लोगों की संख्या आधे से अधिक है। वे इस बात को बहुत अच्छी तरह समझ चुके है कि राजनीतिक नेताओ की कथनी और करनी में बड़ा फर्क है वे अपने व्यक्तिगत राजनीतिक स्वार्थो के लिये जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रीयतावाद, साम्प्रदायिकता का विष समाज मे फैला रहे है।

इन बातों का सबसे ज्वलन्त उदाहरण शाहबानो केस के प्रकरण को देखा जा सकता है जिसमें भारत की राष्ट्रीय पार्टी कांग्रेस ने हिन्दू व मुस्लिम बुद्धिजीवियों के दृष्टिकोण की परवाह न करते हुये मुस्लिम कट्टरपंथियो को खुश करने के लिये शाहबानो के मुकद्दमें में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय को रद्द करने के लिये मुस्लिम औरतो के तलाक से सम्बन्धित उनके अधिकारों के सम्बन्ध में जो कानून पास किया वह कांग्रेस दल की धर्मनिरपेक्ष विरोधी नीतियो का जीता–जागता प्रमाण है। कांग्रेस दल के सदस्य व नेतृत्व इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि वे ऐसा करके ठीक नही कर रहे है परन्तु फिर भी राजनीतिक स्वार्थ के वशीभूत होकर ऐसा करने में संकोच नही किया गया। लेकिन उपर्युक्त विवषतायें क्षेत्रीय दलो के समक्ष नही दिखायी पड़ती है ये क्षेत्रीय दल जनता के सामने ऐसे विषय तथा मुद्दे उठाते है जिनकी जनता के दिलों में भावनात्मक अपील होती है। उदाहरणतया तमिलनाडु में हिन्दी को राजभाषा बनाये जाने का विरोध, असम में विदेशी लोगों के अवैध प्रवासन का विरोध, हरियाणा में सतलज, यमुना लिंक नहर का विषय, सिक्किम में नेपाली मूल के लोगो को मतदान का अधिकार दिलाने की समस्या तथा पंजाब में चण्डीगढ के तबादले के विषयों के साथ वहॉ के लोगों के भावनात्मक सम्बन्ध है। इसी लिये डी0 एम0 के0 व अन्ना डी0 एम0 के0, असम गण परिषद, अकाली दल, तेलगू देशम् इत्यादि क्षेत्रीय राजनीतिकदल न केवल राजनीतिक पटल पर उभर कर आये बल्कि स्वयं के अस्तित्व को मजबूती के साथ बनाये रखने मे सफल रहे। यद्यपि कि इन राजनीतिक दलों की पृथकतावादी व संकुचित नीतियॉ हमारे देश के संविधान के पंथ निरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता के उद्देश्यों के अनुसार नही है फिर भी इस बात से इनकार नही किया जा सकता कि इन राजनीतिक दलों ने कुछ ऐसे विषय जनता के सामने उठाये जिनसे उनकी फिर से राजनीतिक प्रक्रिया में दिलचस्पी हो गयी, इसके परिणामस्वरूप साधारण जनता ने भी राजनीति में दोबारा सक्रिया रूप से भाग लेना आरम्भ कर दिया है। क्षेत्रीय राजनतिक दलों की यह एक महत्वूपर्ण भूमिका है।

संघात्मक प्रक्रिया पर प्रभाव

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त प्रारम्भिक दौर में केन्द्र तथा राज्यों में कांग्रेस पार्टी का बहुत लम्बे समय तक शासन रहा है उसका भी संघात्मक प्रक्रिया में प्रतिकूल प्रभाव पडा है। विभिन्न राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों के विरूद्ध केन्द्रीय सरकार ने अपने अधिकारों का दुरूपयोग करके राज्यों की स्वायत्तता को भारी आघात पहुॅचाया है। राज्य सरकारों तथा राज्यपालों को जिस ढंग से बर्खास्त किया गया और जिस तरह से राज्यपालों ने विधानसभाओं का सत्र बुलाने सत्रावसान करने तथा उन्हे भंग करने और मुख्य मंत्रियों को नियुक्त करने तथा बर्खास्त करने और राष्ट्रपति शासन लागू करने के अधिकारों का दुरूपयोग किया है वह दुर्भाग्यपूर्ण है। केन्द्रीय सरकार द्वारा दलगत हितो के आधार पर जॉच आयोग नियुक्त करने तथा राज्यों को अनुदान देने की नीति भी पक्षपातपूर्ण रही है। योजना आयोग तथा वित्तआयोगों की नीतियां तथा भूमिका ऐसी रही है जिन्होने राज्यों को आर्थिक रूप से पराश्रित बना दिया है। उपर्युक्त बातों के परिप्रेक्ष्य में यह कहना बहुत गलत नही होगा कि सशक्त क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की भूमिका के बिना हमारी संघीय प्रक्रिया लगभग अभी तक समाप्त हो गयी होती क्योंकि यह क्षेत्रीय राजनीतिक दल ही राज्यों की स्वायत्तता तथा उनके अधिकारों की लड़ाई लड़ रहे है। केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों का अध्ययन करने के लिये 1968 मे तमिल नाडु सरकार द्वारा गठित 'राजमन्नार आयोग' ने राज्यों की स्वयत्तता के विषय को जनता के सामने स्पष्ट रूप से रखां इसके पश्चात् 1973 में अकाली दल ने आनन्द पुर साहब प्रस्ताव पास किया और 1977 में पश्चिम बंगाल की सरकार ने केन्द्र तथा राज्यों की सरकारों के सम्बन्ध में जो दस्तावेज केन्द्रीय सरकार को दिया, इसमें भी राज्यों की स्वायत्तता की मॉग उठायी गयी थी।

सन् 1983 में कर्नाटक, तमिलनाडु आन्ध्रप्रदेश तथा पाण्डिचेरी के मुख्य मंत्रियों की एक बैठक बंगलुरू में हुई थी जिसमें राज्यों की स्वायत्तता की समस्या पर विचार–विमर्श किया गया था। इसी बैठक के फलस्वरूप केन्द्र तथा राज्यों के संबंधों का अध्ययन करने के लिये 'सरकारिया आयोग' की नियुक्ति की गयी थी। यद्यपि कि सरकारिया आयोग ने कुछ समय पश्चात् अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी थी परन्तु अभी तक इसे स्वीकार नही किया गया है और इस बात की प्रबल सम्भावना है कि जब भी कभी उसे स्वीकार किया जायेगा तो वह केवल क्षेत्रीय दलों के दबाव के कारण ही स्वीकार किया जायेगा।

राज्य निर्माण तथा राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया पर प्रभाव

जहां तक राष्ट्र निर्माण तथा राज्य निर्माण की प्रक्रिया का सम्बन्ध है उसके बारें में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की भूमिका कोई बहुत अच्छी नही रही है क्योंकि इन्होने क्षेत्रवाद, भाषावाद, भूमिपुत्र के सिद्धान्त, साम्प्रदायिकतावाद तथा कबीलावाद के नारे लगाकर देश की एकता अखण्डता तथा भाईचारे की सद्भावना को आघात पहुॅचाया है। इसके अतिरिक्त कुछ क्षेत्रीय दलों की पृथकतावादी गतिविधियॉ भी रही है और उन्होने राष्ट्रविरोधी तत्वों की भी सहायता की है। उदाहरणतया त्रिपुरा में त्रिपुरा उपजाति जुब्बा समिति ने उन सभी लोगो को विदेशियों को संज्ञा दी जो भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् वहां आकर बस गये थे और उन्हे यह भी आदेश दिया कि ये त्रिपुरा छोड़कर चले जायें चूॅकि अब त्रिपुरा में बंगालियों की संख्या अधिक है इसलिये त्रिपुरा उपजाति जुब्बा समिति तथा त्रिपुरा नेशनल वालन्टियर्स यह चाहते है कि बंगाली त्रिपुरा छोड़कर चलें जायें।

इसी प्रकार मिजोरम में मिजो नेशनल फ्रन्ट भी पृथकतावादी क्षेत्रीय दल रहा है और इसी के कारण 1966 तथा पुनः 1975 में अवैध घोषित कर दिया गया था। यहां तक कि 1960 में डी0 एम0 के0 का भी एक पृथकतावादी संगठन के रूप में उत्पत्ति हुई थी और इसने भी मॉग उठायी थी कि दक्षिण भारत से 'द्रविड़स्तान' को एक स्वतन्त्र देश बना दिया जाए। सन् 1962 में इसने द्रविड़स्तान बनाने की मॉग के आधार पर चुनाव लड़ा था और विधानसभा मे मजबूत दल के रूप में उभरी थी। इसी प्रकार से 'अकाली दल' भी पृथकतावादी पार्टी रही है, जो 'खालिस्तान' की मॉग के आधार पर क्षेत्रीय दल के रूप में पहचान बनाने में सफल रही है। इसी प्रकार असम में 'उल्फा' यूनाइटेड लिबरेशन फ्रन्ट ऑफ असम तथा जम्मू में जम्मू व कश्मीर लिबरेशन फ्रन्ट, मुस्लिम जांबाज फोर्स, प्लेबिसाईट फ्रन्ट इत्यादि संगठन पृथकतावादी है। इस रूप में भारत

के समक्ष राष्ट्रनिर्माण की समस्या बहुत ही विकट रूप में विद्यामान रही है यदि सरकार इन चुनौतियों का प्रभावकारी तरीके से सामना करना चाहती है तथा विभाजन की मॉग की समस्या का समुचित समाधान चाहती है तो आवश्यक कदम उठाने की क्षमता व इच्छा शक्ति को दिखाना आवश्यक है जिससे वंचन की भावना को सुधारा व रोका जा सके। सांस्कृतिक बहुलवादी समाजों की विशेषतायें संघर्ष की प्रवृत्ति रखती है लेकिन यह आवश्यक नही कि इससे विघटन की सम्भावना को टाला न जा सके, वास्तव में किसी भी देश का विघटन सांस्कृतिक बहुलवाद का परिणाम नही होता है बल्कि यह आर्थिक व राजनीतिक दोनों की प्रबन्धकीय स्तर पर असफलता के कारण शुरू होता है वास्तव में बहुलवादी समाजों में संघर्ष एक तथ्य है इसका कोई न कोई अर्न्तनिहित कारण होता है आम जनता का आर्थिक असन्तोष व उनका शोषण जो राजनीतिक अभिजनों द्वारा होता है। यह संघर्ष मूलतः सौदेबाजी व राजनीतिक दबावों से प्रकट होता है और इसका उद्देश्य होता है उचित राजनीतिक–आर्थिक हिस्सेदारी न कि पृथकतावाद। इसीलिये यदि राजनीतिक–आर्थिक व्यवस्था पर्याप्त मात्रा में लचीली दिखती है तथा उचित मॉगों का समायोजन होता है तो यह न केवल उस संघर्ष को रोकती है जिसका उद्देश्य अनुचित तथा गलत सौदेबाजी होता है बल्कि यह इसके स्वरूप तथा भागीदारी पूर्ण व्यवहार को राष्ट्र निर्माण के हित में बदलती है अतः कहा जा सकता है कि यह राजनीतिक विकास और सहयोग की वह प्रक्रिया है जा नये लक्ष्यों तथा मॉगों को उदार व्यवहार मे लाती है। इस रूप में हम कह सकते है कि क्षेत्रवाद राष्ट्र निर्माण का संकट नही है बल्कि यह विकास का संकट है इसका समाधान एक नये समाज के निर्माण में है एक वह समाज जिसका आधार पूर्ण स्वतन्त्रता का आदर करना तथा बहुलवाद व सभी समाजों मे अवास्तविक सिद्धान्त को खत्म करना हो। इसलिये इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राज्य निर्माण तथा राष्ट्र निर्माण के दृष्टिकोण से जहां कुछ क्षेत्रीय दलों की भूमिका तो बहुत ही नकारात्मक रही है यहां तक कि कुछ राष्ट्रीय दलो ने भी दलगत हितों को ध्यान में रखते हुये ऐसे क्षेत्रीय दलों के साथ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से गठबंधन किये है जो कि बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है।

केन्द्र सरकार की निरंकुशता के विरूद्ध सुरक्षा

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों के उभार ने कुछ विषयों पर क्षेत्रीय दलो द्वारा केन्द्र का विरोध करके उसे उसका निर्णय बदलने पर विवष करने में सफल रहे है। यदि क्षेत्रीय दल सशक्त नही होते तो कांग्रेस पार्टी अपनी सत्ता का दुरूपयोग करके प्रजातन्त्र तथा संघात्मक पद्धति को और भी अधिक क्षति पहुॅचायी होती। वास्तविकता तो यह है कि 1967 से पूर्व कांग्रेस पार्टी किसी भी राज्य में किसी भी गैर कांग्रेस पार्टी का शासन बर्दास्त करने को तैयार नही थी परन्तु उसी के पश्चात् जब तमिलनाडु मे 'डी0 एम0 के0' एक सशक्त पार्टी के रूप में उभर कर सामने आई और उसके कुछ समय पश्चात् जब 1969 में कांग्रेस पार्टी के विभाजन के कारण कमजोर हो गयी तो उसको विवष होकर 1971 के चुनावों में डी0 एम0 के0 के साथ चुनाव गठबंधन करना पड़ा। उदाहरणतया कांग्रेस ने डी0 एम0 के0 के साथ यह समझौता किया कि वह विधानसभा के लिये किसी भी स्थान पर चुनाव नही लडेगी और लोकसभा के लिये 39 स्थानों मे से 13 स्थानों पर चुनाव लडेगी।

इस समझौते से स्पष्टतया यह सिद्ध हो जाता है कि कांग्रेस पार्टी को डी0 एम0 के0 के सामने झुकना पड़ा। इसी प्रकार नौवे और दसवें लोक सभा चुनावों में भी कांग्रेस पार्टी ने ''आल इण्डिया अन्ना डी0 एम0 के0'' के साथ लगभग इसी प्रकार का समझौता किया और वह क्रम वर्तमान लोकसभा चुनावों तक बना हुआ है। इस तरह क्षेत्रीय दलों के साथ चुनाव गठबंधन करना, ऐसा नही था कि कांग्रेस पार्टी ने इन दलों को पसन्द करने के आधार पर गठबंधन किया बल्कि यह कांग्रेस पार्टी की मजबूरी थी और इस रूप मे क्षेत्रीय दलों के अस्तित्व को स्वीकार करके एक दलीय निरंकुषता की समाप्ति के लिये मार्ग प्रसस्त किया है। इन उपर्युक्त विवषताओं के न होने पर और इन राज्यों में क्षेत्रीय दलो की मजबूत स्थिति न होने पर कांग्रेस पार्टी उन्हे एक दिन भी सत्ता मे न रहने देती और जिस प्रकार ''फारूख अब्दुल्ला'' की सरकार को जम्मू काश्मीर में और 'एन0टी0 रामाराव' की सरकार को आन्ध्र प्रदेश में बर्खाश्त किया गया था वह इस बात का प्रमाण है कि पार्टी सत्ता मे रहने के लिये कोई भी हथकण्डे अपना सकती है। हालांकी इस समय जम्मू और कश्मीर में जी0 एम0 शाह को मुख्यमंत्री बनाने में सफल हो गयी जिनकी स्थिति एक कठपुतली सरकार के समान थी परन्तु आन्ध्र प्रदेश में वह ऐसा करने में सफल नही हुई क्योंकि भाष्कर राव की कठपुतली सरकार को विवष होकर पद से त्यागपत्र देना पड़ा और उसके स्थान पर एन0 टी0 रामाराव दोबारा अपनी सरकार बनाने मे सफल हो गये। इसके अतिरिक्त उस समय के आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल श्री रामलाल को भी विवष होकर अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा और शक्ति के इस प्रकार से दुरूपयोग के कारण आन्ध्र प्रदेश के लोगों में जो नाराजगी की लहर उठी उसके परिणामिस्वरूप आने वाले के चुनावों में इन राज्यों में कांग्रेस पार्टी की बुरी तरह से हार हुई।

इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय स्तर पर सशक्त विपक्ष न होने के कारण क्षेत्रीय पार्टियां ही केन्द्र की सत्ता के दुरूपयोग को रोक सकती है। जिस प्रकार से अकाली दल ने पंजाब में, असम गण परिषद ने असम मे, केन्द्र को उन राज्यों की समस्याओं के समाधान के लिये समझौते करने पर विवष कर दिया वह इस बात का सबूत है कि सशक्त क्षेत्रीय दल केन्द्र को मनमानी करने से रोक सकते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चन्द्र, विपिन, ''आधुनिक भारत का इतिहास,'' ओरियंट ब्लैकस्वान पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010।
2. नारंग, ए0 एस0, ''भारतीय शासन एवं राजनीति,'' गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2005।
3. डॉ0 पुखराज जैन, एवं डॉ0 बी0 एल0 फाड़िया, ''भारतीय शासन एवं राजनीति (राज्यो की राजनीति सहित), साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2005।
4. सिवाच, डॉ0 जे0 आर0, ''भारत की राजनैतिक व्यवस्था,'' स्टर्लिंग पब्लिशर्स, 1977।
5. सिंह, महेन्द्र प्रसाद, ''भारतीय शासन और राजनीतिक ओरियंट ब्लैकस्वान पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011।